

## Chapter दस

### यमलार्जुन वृक्षों का उद्धार

इस अध्याय में बतलाया गया है कि किस प्रकार कृष्ण ने यमलार्जुन वृक्षों को गिरा दिया जिनसे नलकूवर तथा मणिग्रीव नामक कुवेर के दो पुत्र प्रकट हुए।

नलकूवर तथा मणिग्रीव शिवजी के महान् भक्त थे किन्तु भौतिक ऐश्वर्य के कारण वे इतने बहुव्ययी तथा विवेकहीन हो गये कि एक दिन वे सरोवर में नग्न युवतियों के साथ किलोलें कर रहे थे और निर्लज्जतापूर्वक इधर-उधर विचरण करने लगे। सहसा नारदमुनि उधर से निकले किन्तु वे दोनों अपने ऐश्वर्य और मिथ्या प्रतिष्ठा से इतने मदान्ध हो चुके थे कि नारदमुनि को देखकर भी वे नंगे ही रहे और तनिक भी नहीं लजाये। दूसरे शब्दों में, वे ऐश्वर्य तथा झूठी प्रतिष्ठा के कारण सामान्य शिष्टाचार भी

भूल गये। वस्तुतः भौतिक गुणों की प्रकृति ही ऐसी होती है कि जब मनुष्य धन और प्रतिष्ठा की दृष्टि से अत्यन्त ऐश्वर्यवान् हो जाता है, तब वह शिष्टाचार भूल जाता है और नारदमुनि जैसे मुनियों की भी परवाह नहीं करता। ऐसे मोहग्रस्त व्यक्तियों के लिए ( *अहंकार विमूढात्मा* ), विशेष रूप से जो भक्तों का उपहास करते हैं, उचित दण्ड यही है कि वे फिर से दरिद्र बन जाँय। वैदिक विधि-विधान बतलाते हैं कि किस प्रकार यम, नियम इत्यादि के अभ्यास से मिथ्या प्रतिष्ठा के भाव पर नियंत्रण प्राप्त किया जा सकता है ( *तपसा ब्रह्मचर्येण शमेन च दमेन च* )। एक निर्धन व्यक्ति को आसानी से आश्वस्त किया जा सकता है कि इस भौतिक जगत में ऐश्वर्यशाली पद क्षणिक होता है किन्तु धनी व्यक्ति को नहीं। अतः नारदमुनि ने इन दोनों व्यक्तियों—नलकूवर तथा मणिग्रीव—को वृक्षों की तरह अचेतन बनने का शाप देकर एक दृष्टान्त प्रस्तुत किया। यह बहुत ही उपयुक्त दण्ड था। किन्तु कृष्ण अतीव कृपालु हैं। अतः दण्डित होने पर भी दोनों भाई इतने भाग्यशाली निकले कि उन्हें भगवान् का साक्षात्कार हो सका। अतः वैष्णवों द्वारा दिया गया दण्ड, दण्ड नहीं प्रत्युत दया का अन्य रूप होता है। देवर्षि के शाप से नलकूवर तथा मणिग्रीव यमल अर्जुन वृक्ष बन गये और माता यशोदा तथा नन्द महाराज के आँगन में कृष्ण का प्रत्यक्ष दर्शन करने की प्रतीक्षा करते रहे। भगवान् कृष्ण ने अपने भक्त की इच्छा से इन यमलार्जुन वृक्षों को गिरा दिया और जब १०० वर्षों के बाद नलकूवर तथा मणिग्रीव का इस तरह उद्धार हो गया तो उनकी पुरानी चेतना जागृत हो उठी और उन्होंने देवोचित विधि से स्तुति की। इस प्रकार कृष्ण का साक्षात्कार करने का अवसर पाकर ही वे यह समझ सके कि नारदमुनि कितने कृपालु थे। फलतः उन्होंने उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट की और उन्हें धन्यवाद दिया। इसके बाद भगवान् कृष्ण की परिक्रमा करके वे अपने अपने धाम चले गये।

श्रीराजोवाच

कथ्यतां भगवन्नेतत्तयोः शापस्य कारणम् ।

यत्तद्विगर्हितं कर्म येन वा देवर्षेस्तमः ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-राजा उवाच—राजा ने आगे पूछा; कथ्यताम्—कृपया कहें; भगवन्—हे परम शक्तिमान्; एतत्—यह; तयोः—उन दोनों के; शापस्य—शाप का; कारणम्—कारण; यत्—जो; तत्—वह; विगर्हितम्—निन्दनीय; कर्म—कर्म; येन—जिससे; वा—अथवा; देवर्षेः तमः—नारदमुनि इतने क्रुद्ध हो उठे।

राजा परीक्षित ने शुकदेव गोस्वामी से पूछा: हे महान् एवं शक्तिशाली सन्त, नारदमुनि द्वारा

नलकूवर तथा मणिग्रीव को शाप दिये जाने का क्या कारण था? उन्होंने ऐसा कौन-सा निन्दनीय कार्य किया कि देवर्षि नारद तक उन पर क्रुद्ध हो उठे? कृपया मुझे कह सुनायें।

श्रीशुक उवाच

रुद्रस्यानुचरौ भूत्वा सुदृप्तौ धनदात्मजौ ।  
कैलासोपवने रम्ये मन्दाकिन्यां मदोत्कटौ ॥ २ ॥  
वारुणीं मदिरां पीत्वा मदाघूर्णितलोचनौ ।  
स्त्रीजनैरनुगायद्भिश्चैरतुः पुष्पिते वने ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी ने उत्तर दिया; रुद्रस्य—शिवजी के; अनुचरौ—दो भक्त या पार्षद; भूत्वा—बन कर; सु-दृप्तौ—अपने पद तथा अपने सुन्दर रूप-रंग से गर्वित होकर; धनद-आत्मजौ—देवों के कोषाध्यक्ष कुवेर के दोनों पुत्र; कैलास-उपवने—शिवजी के निवास कैलाश पर्वत से लगे एक छोटे बाग में; रम्ये—सुन्दर स्थान में; मन्दाकिन्याम्—मन्दाकिनी नदी के तट पर; मद-उत्कटौ—अत्यधिक गर्वित तथा उन्मत्त; वारुणीम्—वारुणी को; मदिराम्—नशीले द्रव को; पीत्वा—पी पी कर; मद-आघूर्णित-लोचनौ—नशे से आँखें घुमाते हुए; स्त्री-जनैः—स्त्रियों के साथ; अनुगायद्भिः—उनके द्वारा गाये गये गीतों से गुञ्जरित; चैरतुः—घूम रहे थे; पुष्पिते वने—सुन्दर फूल के बाग में।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : हे राजा परीक्षित, चूँकि कुवेर के दोनों पुत्रों को भगवान् शिवजी के पार्षद होने का गौरव प्राप्त था, फलतः वे अत्यधिक गर्वित हो उठे थे। उन्हें मन्दाकिनी नदी के तट पर कैलाश पर्वत से सटे हुए बाग में विचरण करने की अनुमति प्राप्त थी। इसका लाभ उठाकर वे दोनों वारुणी नाम की मदिरा पिया करते थे। वे अपने साथ गायन करती स्त्रियों को लेकर उस फूलों के बाग में घूमा करते थे। उनकी आँखें नशे से सदैव घूमती रहती थीं।

तात्पर्य : इस श्लोक में शिवजी के भक्तों या पार्षदों को प्राप्त कतिपय भौतिक सुविधाओं का उल्लेख हुआ है। यदि कोई व्यक्ति शिवजी के अतिरिक्त किसी अन्य देवता का भी भक्त होता है, तो उसे कुछ भौतिक सुविधाएँ मिलती हैं। इसलिए मूर्ख लोग देवताओं के भक्त बन जाते हैं। भगवान् कृष्ण ने भगवद्गीता (७.२०) में इसका संकेत करते हुए इसकी आलोचना की है—  
कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः प्रपद्यन्तेऽन्यदेवताः। जो कृष्णभक्त नहीं हैं उन्हें स्त्रियों, मदिरा इत्यादि का व्यसन लग जाता है इसलिए उन्हें हृतज्ञान अर्थात् विवेकशून्य कहा गया है। कृष्णभावनामृत आन्दोलन ऐसे मूर्ख लोगों को तुरन्त पहचान लेता है क्योंकि भगवद्गीता (७.१५) में उनका संकेत किया गया है जहाँ कृष्ण कहते हैं—

न माम् दुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यन्ते नराधमाः ।

माययापहतज्ञाना आसुरं भावं आश्रितः ॥

“ऐसे दुष्ट जो निपट मूर्ख हैं, मनुष्यों में अधम हैं, जिनका ज्ञान मोह द्वारा अपहृत हो चुका है और जो आसुरी नास्तिक प्रकृति वाले हैं, वे मेरी शरण में नहीं आते।” जो व्यक्ति कृष्णभक्त नहीं है और उनकी शरण में नहीं जाता उसे *नराधम* अर्थात् मनुष्यों में सबसे नीच तथा *दुष्कृती* अर्थात् पापकर्मों को करने वाला माना जाना चाहिए। अधम व्यक्ति को ढूँढ लेना कोई कठिन काम नहीं है क्योंकि उसकी स्थिति का पता केवल इसी एक कसौटी से लग जाता है कि वह कृष्ण का भक्त है अथवा नहीं।

आखिर देवताओं के भक्तों की संख्या वैष्णवों से अधिक क्यों है? इसका उत्तर यहाँ दिया गया है। वैष्णवजन न तो वारुणी तथा स्त्रियों जैसी निम्न कोटि के मनोरंजनों में रुचि लेते हैं, न ही कृष्ण ऐसी सुविधाओं की अनुमति देते हैं।

अन्तः प्रविश्य गङ्गायामम्भोजवनराजिनि ।

चिक्रीडतुर्युवतिभिर्गजाविव करेणुभिः ॥ ४ ॥

शब्दार्थ

अन्तः—भीतर; प्रविश्य—घुस कर; गङ्गायाम्—गंगा अर्थात् मन्दाकिनी में; अम्भोज—कमलों का; वन-राजिनि—जहाँ घना जंगल था; चिक्रीडतुः—दोनों क्रीड़ा किया करते थे; युवतिभिः—युवतियों के साथ में; गजौ—दो हाथी; इव—सदृश; करेणुभिः—हथिनियों के साथ।

कमल के फूलों के उद्यानों से आवृत मन्दाकिनी गंगा के जल के भीतर कुवेर के ये दोनों पुत्र युवतियों के साथ उसी तरह क्रीड़ा करते थे जिस तरह पानी के भीतर दो हाथी हथिनियों के साथ क्रीड़ा करते हैं।

तात्पर्य : सामान्यतया लोग अपने पापों से शुद्ध होने के लिए गंगा में स्नान करने जाते हैं किन्तु यहाँ पर इसका दृष्टान्त प्रस्तुत हुआ है कि किस तरह मूर्ख लोग पापमय कार्य करने के लिए गंगा में प्रवेश करते हैं। ऐसा नहीं है कि गंगा में प्रवेश करने से हर कोई शुद्ध होता हो। आध्यात्मिक अथवा भौतिक कार्य तो मनुष्य की मानसिक दशा पर निर्भर करता है।

यदृच्छया च देवर्षिर्भगवांस्तत्र कौरव ।

अपश्यन्नारदो देवौ क्षीबाणौ समबुध्यत ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

यदृच्छया—संयोगवश, सारे ब्रह्माण्ड का भ्रमण करते हुए; च—तथा; देव-ऋषिः—देवताओं में परम सन्त-पुरुष; भगवान्—अत्यन्त शक्तिशाली; तत्र—वहाँ ( जहाँ कुवेर के पुत्र क्रीड़ा कर रहे थे ); कौरव—हे महाराज परीक्षित; अपश्यत्—देखा; नारदः—परम सन्त ने; देवी—देवताओं के दोनों बालकों को; क्षीबाणौ—नशे से उन्मत्त आँखों वाले; समबुध्यत—समझ गये।

हे महाराज परीक्षित, उन दोनों बालकों के सौभाग्य से एक बार देवर्षि नारद संयोगवश वहाँ प्रकट हो गये। उन्हें नशे में उन्मत्त तथा आँखें घुमाते हुए देख कर नारद उनकी दशा समझ गये।

तात्पर्य : कहा गया है ( चैतन्य-चरितामृत मध्य २२.५४)

‘साधुसंग’ ‘साधुसंग’—सर्वशास्त्रे कय।

लवमात्र साधुसंगे सर्वसिद्धि हय ॥

नारदमुनि जहाँ भी जाते हैं और जिस मुहूर्त में वे प्रकट होते हैं उसे अत्यन्त शुभ माना जाता है।

कहा भी गया है ( चैतन्य-चरितामृत मध्य (१९.१५१)

ब्रह्माण्ड भ्रमिते कोन भाग्यवान जीव।

गुरु-कृष्ण-प्रसादे पाय भक्तिलता-बीज ॥

“सारे जीव अपने अपने कर्मों के अनुसार सारे ब्रह्माण्ड में भटकते रहते हैं। इनमें से कुछ स्वर्ग जाते हैं, तो कुछ नरक जाते हैं। भटकने वाले ऐसे लाखों जीवों में से जो अत्यन्त भाग्यशाली होता है उसे ही कृष्ण की कृपा से प्रामाणिक आध्यात्मिक गुरु का सान्निध्य प्राप्त हो पाता है। कृष्ण तथा गुरु दोनों की कृपा से ऐसे व्यक्ति को भक्तिलता का बीज प्राप्त हो पाता है।” उस बाग में कुवेर के दोनों पुत्रों को भक्ति का बीज प्रदान करने के लिए ही नारद प्रकट हुए, यद्यपि वे दोनों नशे में उन्मत्त थे। सन्त-पुरुष जानते हैं कि पतितात्माओं पर किस तरह कृपा की जाती है।

तं दृष्ट्वा व्रीडिता देव्यो विवस्त्राः शापशङ्किताः ।

वासांसि पर्यधुः शीघ्रं विवस्त्रौ नैव गुह्यकौ ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

तम्—नारदमुनि को; दृष्ट्वा—देखकर; व्रीडिताः—लज्जित; देव्यः—देव कुमारियाँ; विवस्त्राः—नंगी; शाप-शङ्किताः—शापित होने से भयभीत; वासांसि—वस्त्र; पर्यधुः—अपना शरीर ढक लिया; शीघ्रम्—तुरन्त; विवस्त्रौ—वे भी नंगे थे; न—नहीं; एव—निस्सन्देह; गुह्यकौ—कुवेर के दोनों पुत्र।

नारद को देखकर नग्न देव-कुमारियाँ अत्यन्त लज्जित हुईं। उन्होंने शापित होने से भयभीत होकर अपने शरीर को अपने-अपने वस्त्रों से ढक लिया। किन्तु कुवेर के दोनों पुत्रों ने ऐसा नहीं किया। उलटे, नारद की परवाह न करते हुए वे नंगे ही रहे।

तौ दृष्ट्वा मदिरामत्तौ श्रीमदान्धौ सुरात्मजौ ।  
तयोरनुग्रहार्थाय शापं दास्यन्निदं जगौ ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

तौ—देवताओं के दोनों बालकों को; दृष्ट्वा—देखकर; मदिरा-मत्तौ—शराब पीने के कारण नशे में मस्त उन्मत्त; श्री-मद-  
अन्धौ—झूठी प्रतिष्ठा तथा ऐश्वर्य के कारण अन्धे हुए; सुर-आत्मजौ—देवताओं के दोनों पुत्र; तयोः—उनके; अनुग्रह-अर्थाय—  
विशेष कृपा करने के प्रयोजन से; शापम्—श्राप; दास्यन्—देने की इच्छा से; इदम्—यह; जगौ—उच्चारित किया ।

देवताओं के दोनों पुत्रों को नंगा तथा ऐश्वर्य और झूठी प्रतिष्ठा गर्व के नशे में उन्मत्त देखकर  
देवर्षि नारद ने उन पर विशेष कृपा करने हेतु उन्हें विशेष शाप देना चाहा। अतः वे इस प्रकार  
बोले।

तात्पर्य : यद्यपि प्रारम्भ में अत्यन्त क्रुद्ध होने के कारण नारद ने शाप दे डाला किन्तु अन्त में  
नलकूवर तथा मणिग्रीव दोनों को भगवान् कृष्ण का साक्षात् दर्शन हो सका। इस तरह शाप अन्ततोगत्वा  
शुभ सिद्ध हुआ। हमें यह देखना होगा कि नारद ने उन्हें किस तरह का शाप दिया। श्रील विश्वनाथ  
चक्रवर्ती ठाकुर ने एक सुन्दर उदाहरण दिया है। जब पिता देखता है कि बच्चा गहरी नींद में सोया हुआ  
है किन्तु उसे किसी बीमारी के इलाज के लिए कोई दवा पीनी है, तो पिता चिकोटी काट कर बच्चे को  
उठाता है, जिससे वह दवा पी सके। इसी तरह नारदमुनि ने नलकूवर तथा मणिग्रीव के भौतिक-अन्धता  
के रोग को ठीक करने के लिए उन्हें शाप दिया।

श्रीनारद उवाच

न ह्यन्यो जुषतो जोष्यान्बुद्धिभ्रंशो रजोगुणः ।  
श्रीमदादाभिजात्यादिर्यत्र स्त्री द्यूतमासवः ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

श्री-नारदः उवाच—नारदमुनि ने कहा; न—नहीं है; हि—निस्सन्देह; अन्यः—दूसरा भोग; जुषतः—भोगने वाले का; जोष्यान्—  
भौतिक जगत की आकर्षक वस्तुएँ ( खाने, सोने, मैथुन करने इत्यादि की विभिन्न किस्में ); बुद्धि-भ्रंशः—बुद्धि को आकर्षित  
करने वाले ऐसे भोग; रजः-गुणः—रजोगुण द्वारा नियंत्रित; श्री-मदात्—सम्पत्ति की अपेक्षा; आभिजात्य-आदिः—चार भौतिक  
नियमों में से ( सुन्दर स्वरूप, राजसी परिवार में जन्म, विद्वत्ता तथा धन-धान्य ); यत्र—जहाँ; स्त्री—स्त्रियाँ; द्यूतम्—जुआ  
खेलना; आसवः—शराब ।

नारदमुनि ने कहा : भौतिक भोग के समस्त आकर्षणों में से एक धन के प्रति आकर्षण  
सुन्दर शारीरिक रूप, उच्च कुल में जन्म तथा विद्वत्ता इन सब में से धन का आकर्षण, बुद्धि को  
अधिक भ्रमित करने वाला है। यदि कोई अशिक्षित व्यक्ति धन से गर्वित हो जाता है, तो वह  
अपना सारा धन शराब, स्त्रियों तथा जुआ खेलने के आनन्द में लगा देता है।

तात्पर्य : प्रकृति के तीनों गुणों—सतो, रजो तथा तमो गुणों—में से लोग रजो तथा तमो गुणों द्वारा और विशेष रूप से रजोगुण द्वारा संचालित होते हैं। रजोगुण से संचालित होने पर मनुष्य इस भौतिक जगत में अधिकाधिक लिप्त होता जाता है। इसीलिए मानव जीवन रजो तथा तमो गुणों का दमन करने और सतो गुण को वर्धित करने के लिए मिला है।

तदा रजस्तमोभावाः कामलोभादयश्च ये।

चेत एतैरनाविद्धं स्थितं सत्त्वे प्रसीदति ॥

( भागवत १.२.१९ )

यही संस्कृति है कि रजो तथा तमो गुणों का दमन किया जाय। रजोगुण में जब मनुष्य को अपने धन का झूठा गर्व हो आता है, तो वह अपना धन केवल तीन चीजों में लगाता है—शराब में, स्त्रियों में तथा जुआ खेलने में। इस युग में विशेष रूप से देखा जा सकता है कि जिनके पास अनावश्यक धन है वे इन्हीं तीन वस्तुओं में उसे खर्चते हैं। पाश्चात्य सभ्यता में धन में अनावश्यक वृद्धि के कारण ये तीनों वस्तुएँ अत्यन्त प्रधान हैं। नारदमुनि ने मणिग्रीव तथा नलकूवर के विषय में इन सभी बातों पर विचार किया क्योंकि उन्होंने देखा कि वे अपने पिता कुवेर के धन पर इतना इतरा रहे हैं।

हन्यन्ते पशवो यत्र निर्दयैरजितात्मभिः ।

मन्यमानैरिमं देहमजरामृत्यु नश्वरम् ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

हन्यन्ते—कई प्रकार से मारे जाते हैं ( विशेषतया कसाईखानों में ); पशवः—पशु, जानवर ( चार पैर वाले ); यत्र—जहाँ;  
निर्दयैः—रजोगुण वाले निर्दय व्यक्तियों द्वारा; अजित-आत्मभिः—अपनी इन्द्रियों को वश में न कर पाने वालों द्वारा;  
मन्यमानैः—सोचते हैं; इमम्—इस; देहम्—शरीर को; अजर—जो न तो कभी बूढ़ा होगा, न रोगी होगा; अमृत्यु—कभी मृत्यु नहीं होगी; नश्वरम्—नाशवान शरीर को।

अपनी इन्द्रियों को वश में करने में असमर्थ धूर्त लोग, जिन्हें अपने धन पर मिथ्या गर्व रहता है या जो राजसी परिवार में जन्म लिये रहते हैं इतने निष्ठुर होते हैं कि वे अपने नश्वर शरीरों को बनाये रखने के लिए, उन्हें अजर-अमर सोचते हुए, बेचारे पशुओं का निर्दयतापूर्वक वध करते हैं। कभी कभी वे केवल अपनी मौज-मस्ती के लिए पशुओं को मार डालते हैं।

तात्पर्य : जब मानव समाज में रजो तथा तमो गुणों की वृद्धि होती है, तो अनावश्यक आर्थिक विकास होता है, जिसका परिणाम होता है लोगों का मदिरा, स्त्रियों तथा जुए में आसक्त होना। तब वे

मदोन्मत्त होकर बड़े बड़े कसाईखाने चलाते हैं या फिर पशुओं का वध करने के लिए पर्यटन पर जाते हैं। वे भूल जाते हैं कि शरीर को बनाये रखने के लिए चाहे जो भी प्रयास किये जाँय, यह शरीर जन्म, मृत्यु, जरा तथा रोग से पीड़ित होता रहेगा। वे मूर्ख एक के बाद एक पापकर्म करते जाते हैं। दुष्कृती होने के कारण वे प्रत्येक हृदय में वास करने वाले परमनियन्ता के अस्तित्व को पूरी तरह से भूल जाते हैं ( ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति )। परम नियन्ता उनकी हर गतिविधि को देखता रहता है और हर एक को प्रकृति द्वारा निर्मित उपयुक्त शरीर प्रदान करके पुरस्कृत या दंडित करता है ( भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया )। इस तरह पापी व्यक्ति विभिन्न शरीरों में स्वतः दण्ड पाते रहते हैं। इस दण्ड का मूल कारण यह है कि जब मनुष्य अनावश्यक रीति से धन का संचय करता है, तो वह अधिक पतित हो जाता है और उसे यह ज्ञान नहीं रह जाता है कि उसका धन अगले जन्म अर्थात् मृत्यु के साथ ही समाप्त हो जायेगा।

न साधुमन्ये यत आत्मनोऽयम्

असन्नपि क्लेशद आस देहः ।

( भागवत ५.५.४ )

पशु-हत्या वर्जित है। किन्तु हर व्यक्ति को कुछ न कुछ खाना पड़ता है ( जीवो जीवस्य जीवनम् )। इसीलिए उसे यह शिक्षा मिलनी चाहिए कि वह किस तरह का भोजन करे। ईशोपनिषद का आदेश है— तेन त्यक्तेन भुञ्जीथ—मनुष्यों के लिए जो भी नियत है, वही खाना चाहिए। भगवद्गीता (९.२६) में कृष्ण कहते हैं—

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति ।

तदहं भक्त्युपहतम् अश्नामि प्रयतात्मनः ॥

“यदि कोई मुझे भक्ति तथा प्रेम से एक पत्ती, फूल, फल या जल अर्पित करता है, तो मैं उसे स्वीकार करता हूँ।” इसलिए भक्त कभी ऐसी कोई भी वस्तु नहीं खाता जिसके लिए बेचारे पशुओं के लिए कसाईघर स्थापित करने पड़ें। प्रत्युत भक्तगण कृष्ण का प्रसाद ग्रहण करते हैं ( तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः )। कृष्ण कहते हैं कि उन्हें पत्रं पुष्पं फलं तोयं प्रदान किया जाय। मनुष्यों के लिए पशु-भोजन की संस्तुति कभी नहीं की जाती, प्रत्युत मनुष्य को कृष्ण-प्रसाद लेने की संस्तुति की जाती है। यज्ञ



शिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषै ( भगवद्गीता ३.१३ ) । यदि प्रसाद खाना प्रारम्भ कर दिया जाय तो थोड़े-बहुत पापकर्म करने पर भी मनुष्य पापकर्मों के फल से छूट जाता है ।

देवसंज्ञितमप्यन्ते कृमिविड्भस्मसंज्ञितम् ।

भूतधुक्तकृते स्वार्थं किं वेद निरयो यतः ॥ १० ॥

शब्दार्थ

देव-संज्ञितम्—शरीर जो अब अत्यन्त महान् पुरुष यथा राष्ट्रपति, मंत्री या देवता कहलाता है; अपि—इतना महान् होते हुए भी; अन्ते—मृत्यु के बाद; कृमि—कीड़ा बन जाता है; विट्—या मल में परिणत हो जाता है; भस्म-संज्ञितम्—या राख में बदल जाता है; भूत-धुक्—शास्त्रों के आदेशों को न मानने वाला तथा अन्य जीवों से ईर्ष्या करने वाला व्यक्ति; तत्-कृते—इस तरह कर्म करते हुए; स्व-अर्थम्—स्वार्थ; किम्—क्या है; वेद—जो जानता है; निरयः यतः—क्योंकि ऐसे पापकर्मों से नारकीय दशा भोगनी होगी ।

जीवित रहते हुए मनुष्य अपने को बड़ा आदमी, मंत्री, राष्ट्रपति या देवता सोचते हुए अपने शरीर पर गर्व कर सकता है किन्तु वह चाहे जो भी हो, मृत्यु के बाद उसका शरीर कीट, मल या राख में परिणत हो जाता है । यदि कोई व्यक्ति अपने शरीर की क्षणिक इच्छाओं की तुष्टि के लिए निरीह पशुओं का वध करता है, तो वह यह नहीं जानता कि उसे अगले जीवन में कष्ट भोगना होगा क्योंकि ऐसे पापी को नरक जाना पड़ेगा और अपने कर्मफल भोगने पड़ेंगे ।

तात्पर्य : इस श्लोक में कृमि-विड्-भस्म—ये तीन शब्द महत्त्वपूर्ण हैं । यदि मृत्यु के बाद शरीर को जलाया नहीं जाता तो वह कृमि बन जाता है अर्थात् उसे कीड़े खा जाते हैं या फिर उसे चील तथा गीदड़ जैसे पशु खाकर मल बना देते हैं । जो अधिक सभ्य हैं, वे मृत शरीर को जलाते हैं जिससे वह भस्म बन जाता है ( भस्म संज्ञितम् ) । भले ही यह शरीर कृमि, मल या राख में क्यों न बदल जाय, मूर्ख व्यक्ति उसे बनाये रखने के लिए अनेक पापकर्म करते हैं । यह निश्चय ही शोचनीय है । मनुष्य का शरीर जीवस्य तत्त्व जिज्ञासा के लिए अर्थात् आध्यात्मिक मूल्यों के ज्ञान का प्रकाश पाने के लिए मिला है । अतः मनुष्य को चाहिए कि प्रामाणिक आध्यात्मिक गुरु की शरण में जाये । तस्माद् गुरुं प्रपद्येत—वह गुरु के पास जाये । गुरु कौन है ? शाब्दे परे च निष्णातम् ( भागवत ११.३.२१ )—गुरु वह है, जिसे पूर्ण दिव्य ज्ञान हो । आध्यात्मिक गुरु के पास गये बिना मनुष्य अज्ञान में रहता जाता है । आचार्यवान् पुरुषो वेद ( छान्दोग्य उपनिषद् ६.१४.२ )—जब कोई आचार्य द्वारा नियंत्रित होता है अर्थात् आचार्यवान् होता है, तो उसे जीवन विषयक पूरा-पूरा ज्ञान रहता है । किन्तु जब वह रजोगुण तथा तमोगुण द्वारा संचालित होता है, तो वह किसी बात की परवाह नहीं करता, उलटे वह मूर्ख पशु की भाँति अपने

जीवन को संकट में डाल कर कर्म करता है ( मृत्युसंसारवर्त्मनि ) । फलतः वह एक न एक कष्ट भोगता रहता है । न ते विदुः स्वार्थगतिं हि विष्णुम् ( भागवत ७.५.३१ ) । ऐसा मूर्ख व्यक्ति यह नहीं जानता कि इस शरीर को पाकर किस प्रकार अपने आपको ऊपर उठाया जाये । उलटे वह पापकर्मों में लिप्त होकर नीचे- नीचे की ओर नारकीय जीवन में फँसता जाता है ।

देहः किमन्नदातुः स्वं निषेक्तुर्मातुरेव च ।

मातुः पितुर्वा बलिनः क्रेतुरग्नेः शुनोऽपि वा ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

देहः—यह शरीर; किम् अन्न-दातुः—क्या यह मेरे स्वामी का है, जो मुझे इसके पालन के लिए धन देता है; स्वम्—या यह स्वयं मेरा है; निषेक्तुः—( या यह ) वीर्यं स्खलित करने वाले का है; मातुः एव—या ( इसे ) गर्भ में धारण करने वाली माता का है; च—तथा; मातुः पितुः वा—यह माता के पिता अर्थात् नाना का है क्योंकि कभी कभी नाना अपने नाती को गोद ले लेता है; बलिनः—या उसका है, जो बलपूर्वक इस शरीर को छीन लेता है; क्रेतुः—या इस शरीर को बँधुए मजदूर की तरह खरीद लेता है; अग्नेः—या अग्नि में ( जला देता है ); शुनः—या कुत्तों तथा गीधों का है, जो उसे खा जाते हैं; अपि—भी; वा—अथवा ।

जीवित रहते हुए यह शरीर उसके अन्नदाता का होता है, या स्वयं का, अथवा पिता, माता या नाना का? क्या यह बलपूर्वक ले जाने वाले का, इसे खरीदने वाले स्वामी का या उन पुत्रों का होता है, जो इसे अग्नि में जला देते हैं? और यदि शरीर जलाया नहीं जाता तो क्या यह उन कुत्तों का होता है, जो इसे खाते हैं? आखिर इतने सारे दावेदारों में असली दावेदार कौन है? इसका पता लगाने के बजाय, पापकर्मों द्वारा इस शरीर का पालन करना अच्छा नहीं है ।

एवं साधारणं देहमव्यक्तप्रभवाप्ययम् ।

को विद्वानात्मसात्कृत्वा हन्ति जन्तून्तेऽसतः ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; साधारणम्—सामान्य सम्पत्ति; देहम्—शरीर को; अव्यक्त—अव्यक्त प्रकृति से; प्रभव—इस प्रकार से व्यक्त; अप्ययम्—पुनः अव्यक्त में लीन होकर ( “क्योंकि, तू मिट्टी है और तुम्हें मिट्टी में ही वापस मिल जाना है” ); कः—कौन है; विद्वान्—ज्ञानी; आत्मसात् कृत्वा—अपना कहते हुए; हन्ति—मारता है; जन्तून्—बेचारे पशुओं को; ऋते—सिवाय; असतः—धूर्त तथा मूढ़ जिन्हें कोई ज्ञान नहीं है ।

यह शरीर आखिर अव्यक्त प्रकृति द्वारा उत्पन्न किया जाता है और नष्ट होकर पुनः प्राकृतिक तत्त्वों में विलीन हो जाता है । अतएव यह सबों का सर्वसामान्य गुण है । ऐसी परिस्थितियों में जो धूर्त होगा वही इस सम्पत्ति को अपनी होने का दावा करेगा और उसे बनाये रखते हुए अपनी इच्छाओं की तुष्टि के लिए पशुओं की हत्या जैसे पापकर्म करता रहता है । केवल मूढ़ ही ऐसे पापकर्म कर सकता है ।

**तात्पर्य :** नास्तिक लोग आत्मा में विश्वास नहीं करते। तो भी, जब तक कोई निष्ठुर नहीं हो तब तक वह पशुओं की व्यर्थ हत्या क्यों करेगा ? शरीर पदार्थ के संयोग की अभिव्यक्ति है। प्रारम्भ में यह कुछ नहीं था किन्तु पदार्थ के संयोग से इसका अस्तित्व हुआ। पुनः जब यह संयोग छिन्न-भिन्न होगा तो इस शरीर का अस्तित्व नहीं रहेगा। आदि में यह शरीर कुछ नहीं था और अन्त में भी यह कुछ नहीं रह जायेगा। तो फिर जब वह व्यक्त रूप में आता है, तो कोई पापकर्म क्यों करे ? जब तक कोई धूर्त न हो तब तक ऐसा कर पाना सम्भव नहीं।

असतः श्रीमदान्धस्य दारिद्र्यं परमञ्जनम् ।

आत्मौपम्येन भूतानि दरिद्रः परमीक्षते ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

असतः—ऐसे मूर्ख धूर्त व्यक्ति का; श्री-मद-अन्धस्य—धन तथा ऐश्वर्य के कारण अन्धा हुआ; दारिद्र्यम्—गरीबी; परम् अञ्जनम्—आँखों का सर्वोत्तम अंजन है, जिससे वस्तुएँ यथारूप में देखी जा सकती हैं; आत्म-औपम्येन—अपने से तुलना करके; भूतानि—जीवों को; दरिद्रः—गरीब व्यक्ति; परम्—पूर्णतया; ईक्षते—देख सकता है।

नास्तिक मूर्ख तथा धूर्त धन के मद के कारण वस्तुओं को यथारूप में नहीं देख पाते। अतएव उन्हें दरिद्र बनाना ही सर्वोत्तम काजल है, जिसे वे आँखों में लगा कर वस्तुओं को उनके वास्तविक रूप में देख सकते हैं। और कुछ नहीं तो, जो दरिद्र है, वह इसका तो अनुभव कर ही सकता है कि दरिद्रता कितनी दुखद होती है। अतएव वह कभी नहीं चाहेगा कि अन्य लोग उसकी तरह दुखमय स्थिति में रहें।

**तात्पर्य :** आज भी वे लोग जो पहले दरिद्र थे अपने धन का सदुपयोग परोपकार के कार्यों में—यथा अशिक्षितों के लिए स्कूल खोलने तथा रोगियों के लिए अस्पताल खोलने में—करना चाहते हैं। इस सम्बन्ध में एक शिक्षाप्रद कथा है, जो *पुनर्मूषिको भव* “फिर से चूहा बन जाओ” नाम से प्रसिद्ध है। एक चूहा बिल्ली से अत्यंत तंग आ चुका था अतः वह एक साधु के पास पहुँचा कि उसे बिल्ली बना दे। जब वह चूहा बिल्ली बन गया तो उसे कुत्ता सताने लगा और जब कुत्ता बन गया तो शेर सताने लगा। किन्तु जब वह शेर बन गया तो उसने साधु की ओर घूरने लगा घूरा और जब साधु ने पूछा कि तुम क्या चाहते हो तो उस शेर ने कहा, “मैं तुम्हें खाना चाहता हूँ।” तब उस साधु ने उसे शाप दिया, “तुम फिर से चूहा बन जाओ।” ऐसी ही बात सारे विश्व में चल रही है। मनुष्य कभी ऊपर जाता है, तो कभी नीचे, कभी चूहा बनता है, तो कभी शेर। श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा है (चैतन्य-

चरितामृत मध्य १९.१५१) —

ब्रह्माण्ड भ्रमिते कोन भाग्यवान् जीव ।

गुरु-कृष्ण-प्रसादे पाय भक्ति-लता-बीज ॥

जीवों का उत्कर्ष-अपकर्ष प्रकृति के नियमों द्वारा होता है किन्तु अगर कोई बहुत ही भाग्यशाली होता है, तो उसे साधु की संगति में रहने से भक्ति का बीज मिल जाता है और उसका जीवन सफल हो जाता है। नारदमुनि दरिद्रता के माध्यम से नलकूवर तथा मणिग्रीव को भक्ति के मार्ग पर लाना चाहते थे इसीलिए उन्हें शाप दिया। वैष्णवों की कृपा ऐसी ही होती है। वैष्णव पद को प्राप्त किये बिना मनुष्य नेक नहीं बन सकता। *हरावभक्तस्य कुतो महद्गुणोः* ( *भागवत* ५.१८.१२ )। किन्तु अवैष्णव को कितना ही दण्ड क्यों न दिया जाय वह कभी नेक व्यक्ति नहीं बन सकता।

यथा कण्टकविद्धाङ्गो जन्तोर्नेच्छति तां व्यथाम् ।

जीवसाम्यं गतो लिङ्गैर्न तथाविद्धकण्टकः ॥ १४ ॥

शब्दार्थ

यथा—जिस प्रकार; कण्टक-विद्ध-अङ्गः—वह पुरुष जिसका शरीर काँटों से बिध चुका हो; जन्तोः—ऐसे पशु को; न—नहीं; इच्छति—चाहता है; ताम्—उस; व्यथाम्—पीड़ा को; जीव-साम्यं गतः—जब वह समझ लेता है कि हर एक की दशा एकसी है; लिङ्गैः—विशेष प्रकार का शरीर धारण करने से; न—नहीं; तथा—उसी तरह; अविद्ध-कण्टकः—जो व्यक्ति काँटों से नहीं बिधा।

जिसके शरीर में काँटे चुभ चुके हैं वह दूसरों के चेहरों को ही देखकर उनकी पीड़ा समझ सकता है कि उन्हें काँटे चुभ रहे हैं। वह यह अनुभव करते हुए कि यह पीड़ा सबों के लिए एकसमान है, यह नहीं चाहता कि अन्य लोग इस तरह से कष्ट भोगें। किन्तु जिसे कभी काँटे गड़े ही नहीं वह इस पीड़ा को नहीं समझ सकता।

तात्पर्य : कहावत है कि “जिसने गरीबी का कष्ट झेला है, वही सम्पत्ति के सुख को भोग सकता है।” एक अन्य कहावत भी है *बन्ध्या कि बुझिबे प्रसव-वेदना*—“बाँझ क्या जाने प्रसव की पीड़ा”। वास्तविक अनुभव किये बिना मनुष्य को इस भौतिक जगत में दुख और सुख की अनुभूति नहीं हो पाती। प्रकृति के नियम इसी प्रकार से कार्य करते हैं। यदि किसी ने किसी पशु का वध किया है, तो वह उसी पशु के द्वारा मारा जायेगा। यह *मांस* कहलाता है। *माम्* का अर्थ है “मुझको” तथा *स* का अर्थ है “वह।” जिस तरह मैं पशु को खाता हूँ उसी तरह वह पशु मुझको खाने का अवसर पायेगा।

इसीलिए प्रत्येक राज सत्ता में हत्या करने वाले को फाँसी देने का विधान है।

दरिद्रो निरहंस्तम्भो मुक्तः सर्वमदैरिह ।

कृच्छ्रं यदृच्छयाप्नोति तद्धि तस्य परं तपः ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

दरिद्रः—गरीब; निर्-अहम्-स्तम्भः—सारी झूठी प्रतिष्ठा से स्वयमेव छूट जाता है; मुक्तः—मुक्त; सर्व—सभी; मदैः—मिथ्या अहंकार से; इह—इस संसार में; कृच्छ्रम्—मुश्किल से; यदृच्छया आप्नोति—भाग्यवश जो उसे प्राप्त होता है; तत्—वह; हि—निस्सन्देह; तस्य—उसकी; परम्—पूर्ण; तपः—तपस्या।

दरिद्र व्यक्ति को स्वतः तपस्या करनी पड़ती है क्योंकि उसके पास अपना कहने के नाम पर कोई सम्पत्ति नहीं होती। इस तरह उसकी मिथ्या प्रतिष्ठा समाप्त हो जाती है। वह सदैव भोजन, आश्रय तथा वस्त्र की आवश्यकता अनुभव करता रहता है, अतः दैव-कृपा से जो भी उसे मिल जाता है उसी से उसे सन्तुष्ट रहना पड़ता है। अनिवार्यतः इस तरह की तपस्या करते रहना उसके लिए अच्छा है क्योंकि इससे उसकी शुद्धि हो जाती है और वह मिथ्या अहंकार से मुक्त हो जाता है।

तात्पर्य : सन्त-पुरुष भौतिक मिथ्या प्रतिष्ठा से छुटकारा पाने के लिए स्वेच्छा से गरीबी स्वीकार कर लेता है। अनेक बड़े बड़े राजा लोग अपना राजसी ठाट-बाट छोड़कर वैदिक संस्कृति के अनुसार तपस्या करने के लिए वन में इसलिए चले गये कि वे शुद्ध हो सकें। किन्तु जो स्वेच्छा से ऐसा नहीं करता वह यदि दरिद्र बन जाता है, तो स्वतः तपस्या करने लगता है। तपस्या हर एक के लिए श्रेयस्कर है क्योंकि इससे भव-बंधन से छुटकारा मिल जाता है। अतः जिसे अपनी भौतिक स्थिति का बहुत गर्व हो तो उसकी मूर्खता ठीक करने के लिए सर्वोत्तम उपाय है कि उसे दरिद्र बना दिया जाय। *दारिद्र्य-दोषो गुण-राशि-नाशि*—जब मनुष्य दरिद्र होता है, तो धन, शिक्षा तथा सौन्दर्य में उसका मिथ्या अहंकार चूर-चूर हो जाता है। इस तरह राह में लाने पर वह मुक्ति के योग्य बन जाता है।

नित्यं क्षुत्क्षामदेहस्य दरिद्रस्यान्नकाङ्क्षिणः ।

इन्द्रियाण्यनुशुष्यन्ति हिंसापि विनिवर्तते ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

नित्यम्—सदैव; क्षुत्—भूख से; क्षाम—निर्बल; देहस्य—शरीर का; दरिद्रस्य—गरीब व्यक्ति के; अन्न-काङ्क्षिणः—सदैव पर्याप्त भोजन की इच्छा रखने वाला; इन्द्रियाणि—इन्द्रियों को, जिनकी उपमा सर्पों से दी जाती है; अनुशुष्यन्ति—धीरे धीरे क्षीण से क्षीणतर होती जाती हैं; हिंसा अपि—अन्यों से ईर्ष्या करने की प्रवृत्ति भी; विनिवर्तते—कम हो जाती है।

दरिद्र व्यक्ति सदैव भूखा रहने और पर्याप्त भोजन की चाह करने के कारण धीरे धीरे क्षीण होता जाता है। अतिरिक्त बल न रहने से उसकी इन्द्रियाँ स्वतः शान्त पड़ जाती हैं। इसलिए दरिद्र मनुष्य हानिप्रद ईर्ष्यापूर्ण कार्य करने में अशक्त होता है। दूसरे शब्दों में, ऐसे व्यक्ति को उन तपस्याओं का फल स्वतः प्राप्त हो जाता है, जिसे सन्त-पुरुष स्वेच्छा से करते हैं।

तात्पर्य : अनुभवी डाक्टरों का मत है कि मधुमेह रोग अत्यधिक खाने से और क्षय रोग अत्यल्प खाने से होता है। हमें न तो मधुमेही बनने, न ही यक्ष्माग्रस्त होने की कामना करनी चाहिए। यादव् अर्थ-प्रयोजनम्। हमें कम खाना चाहिए और इस शरीर को कृष्णभावनामृत में अग्रसर होने के लिए दुरुस्त रखना चाहिए। श्रीमद्भागवत में अन्यत्र (१.२.१०) कहा गया है—

कामस्य नेन्द्रियप्रीतिर्लाभो जीवेत यावता ।

जीवस्य तत्त्वजिज्ञासा नार्थो यश्चेह कर्मभिः ॥

मानव जीवन का असली कार्य अपने को आत्म-साक्षात्कार के लिए स्वस्थ रखना है। मानव जीवन इन्द्रियों को वृथा हटा-कटा बनाने के लिए नहीं है, जिससे वह रोगग्रस्त हो और लड़ाई-झगड़े की भावना लेकर ईर्ष्यालु बने। किन्तु इस कलियुग में मानव सभ्यता का इतना विपथन हुआ है कि लोग व्यर्थ ही अर्थ-विकास में वृद्धि करके अधिकाधिक कसाईघर, मदिरालय तथा वेश्यालय खोल रहे हैं। इस तरह सारी सभ्यता चौपट हो रही है।

दरिद्रस्यैव युज्यन्ते साधवः समदर्शिनः ।

सद्भिः क्षिणोति तं तर्षं तत आराद्विशुद्ध्यति ॥ १७ ॥

शब्दार्थ

दरिद्रस्य—दरिद्र व्यक्ति का; एव—निस्सन्देह; युज्यन्ते—सरलता से संगति कर सकते हैं; साधवः—साधु पुरुष; सम-दर्शिनः—यद्यपि साधु पुरुष दरिद्र तथा धनी दोनों पर समान दृष्टि रखने वाले हैं किन्तु दरिद्र व्यक्ति उनकी संगति का लाभ उठा सकते हैं; सद्भिः—ऐसे साधु पुरुषों की संगति से; क्षिणोति—कम करता है; तम्—भौतिक कष्ट के मूल कारण; तर्षम्—भौतिक मोक्ष की अभिलाषा को; ततः—तत्पश्चात्; आरात्—शीघ्र ही; विशुद्ध्यति—उसका भौतिक कल्मष धुल जाता है।

सन्त-पुरुष दरिद्रों के साथ बिना रोकटोक के घुलमिल सकते हैं किन्तु धनी व्यक्तियों के साथ नहीं। दरिद्र व्यक्ति ऐसे साधु पुरुषों की संगति से तुरन्त ही भौतिक इच्छाओं से विमुख हो जाता है और उसके मन का सारा मैल धुल जाता है।

तात्पर्य : कहा गया है—महद्विचलनं नणां गृहिणां दीनचेतसाम् ( भागवत १०.८.४) । साधु-पुरुष

या संन्यासी का एकमात्र कार्य है कि वह कृष्णभावनामृत का प्रचार करे। यद्यपि साधु-पुरुष निर्धन तथा धनी दोनों को उपदेश देना चाहते हैं किन्तु निर्धन लोग उनके उपदेशों से धनी लोगों की अपेक्षा अधिक लाभ उठाते हैं। निर्धन व्यक्ति साधुओं का तुरन्त स्वागत करता है, उन्हें नमस्कार करता है और उनकी उपस्थिति का लाभ उठाना चाहता है किन्तु धनी व्यक्ति अपने दरवाजे पर एक बड़ा शिकारी कुत्ता रखता है, जिससे कोई उसके घर में घुस न सके। वह दरवाजे पर “कुत्ते से सावधान” लिखी तख्ती टाँग देता है और साधु-पुरुषों की संगति से कतराता है, जबकि निर्धन उनके लिए अपना द्वार खुला रखता है। इस तरह निर्धन लोग धनी लोगों की अपेक्षा उनसे अधिक लाभ उठाते हैं। नारद मुनि पूर्वजन्म में दासी के निर्धन पुत्र थे किन्तु सन्त-पुरुषों की संगति से बाद में स्वयं सुप्रतिष्ठित नारदमुनि बन गये। यह उनका वास्तविक अनुभव था। इसलिए वे अब निर्धन व्यक्ति की अवस्था की तुलना धनी व्यक्ति की अवस्था से कर रहे हैं।

*सतां प्रसङ्गान् मम वीर्यसंविदो*

*भवन्ति हृत्कर्णरसायनाः कथाः ।*

*तज्जोषनादाश्वपवर्गवर्त्मनि*

*श्रद्धा रतिर्भक्तिरनुक्रमिष्यति ॥*

( भागवत ३.२५.२५ )

यदि किसी को सन्त-पुरुषों की संगति का लाभ हो सके तो वह उनके उपदेशों से भौतिक इच्छाओं से अधिकाधिक रहित हो जाता है।

*कृष्णबहिर्मुख हैया भोग-वाञ्छा करे ।*

*निकटस्थ माया तारे जापटिया धरे ॥*

( प्रेमविवर्त )

भौतिक जीवन का अर्थ ही है कि कृष्ण को भूल कर इन्द्रिय-तृप्ति की अधिकाधिक इच्छा करना। किन्तु यदि मनुष्य को सन्त-पुरुषों के उपदेशों का लाभ प्राप्त हो जाता है और वह भौतिक इच्छाओं की महत्ता को भूल जाता है, तो वह अपने आप शुद्ध हो जाता है। *चेतोदर्पणमार्जनं भवमहादावाग्निनिर्वापनम्* ( शिक्षाष्टक १ )। जब तक भौतिकवादी व्यक्ति का हृदय शुद्ध नहीं हो जाता वह

भवमहादावाग्नि के कष्ट से छुटकारा नहीं पा सकता।

साधूनां समचित्तानां मुकुन्दचरणौषिणाम् ।

उपेक्ष्यैः किं धनस्तम्भैरसद्भिरसदाश्रयैः ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

साधूनाम्—साधु-पुरुषों का; सम-चित्तानाम्—उनका जो सबों को समान रूप में देखते हैं; मुकुन्द-चरण-एषिणाम्—जिनका एकमात्र कार्य है भगवान् मुकुन्द की सेवा करना और जो उसी सेवा की आंकाक्षा करते हैं; उपेक्ष्यैः—संगति की उपेक्षा करके; किम्—क्या; धन-स्तम्भैः—धनी तथा गर्वित; असद्भिः—अवांछित व्यक्तियों की संगति से; असत्-आश्रयैः—असतों अर्थात् अभक्तों की शरण लेकर।

सन्त-पुरुष ( साधुजन ) चौबीसों घण्टे कृष्ण का चिन्तन करते रहते हैं। उनकी और कोई रूचि नहीं रहती। तो फिर लोग ऐसे आध्यात्मिक पुरुषों की संगति की उपेक्षा करके क्यों उन भौतिकतावादियों की संगति करने का प्रयास करते हैं तथा उन अभक्तों की शरण लेते हैं जिनमें से अधिकांश अभिमानी तथा धनी हैं ?

तात्पर्य : साधु वह है, जो विचलित हुए बिना भगवद्भक्ति में लगा रहता है ( भजते माम् अनन्यभाक् )

तितिक्षस्वः कारुणिकाः सुहृदः सर्वदेहिनाम् ।

अजातशत्रवः शान्ताः साधवः साधु-भूषणाः ॥

“साधु के लक्षण हैं—वह सभी जीवों के प्रति सहिष्णु, दयालु तथा मित्र-भाव रखने वाला होता है। उसका कोई शत्रु नहीं होता। वह शान्त रहता है, शास्त्रों का पालन करता है और उसके सारे गुण उदात्त होते हैं। ( भागवत ३.२५.२१ )। साधु सबों का मित्र होता है ( सुहृदः सर्वदेहिनाम् ), तो फिर धनी लोग साधुओं की संगति न करके उन अन्य धनी व्यक्तियों की संगति में अपना बहुमूल्य समय क्यों गँवाते हैं, जिन्हें आध्यात्मिक जीवन से वितृष्णा है? निर्धन तथा धनी दोनों ही प्रकार के लोग कृष्णभावनामृत आन्दोलन का लाभ उठा सकते हैं अतः सबों को यही सलाह दी जाती है कि वे ऐसा करें। कृष्णभावनामृत आन्दोलन के सदस्यों की संगति से आनाकानी से कोई लाभ नहीं होगा। नरोत्तम दास ठाकुर ने कहा है—

सत्संग छाडिऽकैनु असते विलास ।

ते-कारणे लागिल ये कर्म-बन्ध-फांस ॥



यदि हम कृष्णभावनाभावित साधुओं की संगति छोड़कर इन्द्रिय-तृप्ति में व्यस्त रहने वाले तथा इसी कार्य के लिए धन संचय करने वाले लोगों से संगति करेंगे तो हमारा जीवन चौपट हो जायेगा। असत् शब्द अवैष्णव अर्थात् जो कृष्ण-भक्त नहीं है, का द्योतक है तथा सत् शब्द वैष्णव अर्थात् कृष्ण-भक्त का। मनुष्य को चाहिए कि वैष्णवों की संगति करे और अवैष्णवों के साथ मेल-जोल कर के अपना जीवन बर्बाद न करे। भगवद्गीता (७.१५) में वैष्णव तथा अवैष्णव का अन्तर बतलाया गया है—

न मां दुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यन्ते नराधमाः ।

माययापहतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः ॥

जो कृष्ण की शरण में नहीं गया वह सर्वाधिक पापी (दुष्कृती), धूर्त (मूढ) तथा सबसे नीच (नराधम) व्यक्ति है। अतः मनुष्यों को चाहिए कि कृष्णभावनामृत आन्दोलन के रूप में विश्व-भर में प्राप्य वैष्णवों की संगति से कतरायें नहीं।

तदहं मत्तयोर्माध्व्या वारुण्या श्रीमदान्धयोः ।

तमोमदं हरिष्यामि स्त्रैणयोरजितात्मनोः ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

तत्—अतएव; अहम्—मैं; मत्तयोः—इन दोनों उम्मत पुरुषों के; माध्व्या—शराब पीने के कारण; वारुण्या—वारुणी नामक; श्री-मद-अन्धयोः—जो दैवी सम्पदा से अन्धे हो चुके हैं; तमः-मदम्—तमोगुण के कारण इस मिथ्या प्रतिष्ठा को; हरिष्यामि—छीन लूँगा; स्त्रैणयोः—स्त्रियों पर अनुरक्त होने के कारण; अजित-आत्मनोः—इन्द्रियों को वश में न कर पाने के कारण।

इसलिए ये दोनों व्यक्ति वारुणी या माध्वी नामक शराब पीकर तथा अपनी इन्द्रियों को वश में न रख सकने के कारण स्वर्ग के ऐश्वर्य-गर्व से अन्धे और स्त्रियों के प्रति अनुरक्त हो चुके हैं। मैं उनको इस झूठी प्रतिष्ठा से विहीन कर दूँगा।

तात्पर्य : जब कोई साधु किसी को डाँटता या दंड देता है, तो वह बदले की भावना से ऐसा नहीं करता। महाराज परीक्षित ने पूछा था कि नारदमुनि में किस तरह बदले की भावना (तमः) उठी। किन्तु यह तमः नहीं था क्योंकि नारदमुनि को पूर्ण ज्ञान था कि इन दोनों भाइयों का हित किसमें हैं इसलिए उन्होंने विचार किया कि उन्हें किस तरह मार्ग पर लाया जाय। वैष्णवजन अच्छे वैद्य होते हैं। वे जानते हैं कि भवरोग से मनुष्यों को कैसे बचाया जाय। अतः वे कभी भी तमोगुणी नहीं होते। स गुणान् समतीत्यैतान् ब्रह्मभूयाय कल्पते (भगवद्गीता १४.२६)। वैष्णवजन सदा ही ब्रह्म-पद पर स्थित होते

हैं। वे न तो कभी कोई गलती करते हैं, न ही भौतिक गुणों के वशीभूत होते हैं। पूरी तरह सोच-विचार कर वे जो भी करते हैं वह सबों को भगवद्धाम ले जाने के लिए मार्गदर्शक होता है।

यदिमौ लोकपालस्य पुत्रौ भूत्वा तमःप्लुतौ ।  
 न विवाससमात्मानं विजानीतः सुदुर्मदौ ॥ २० ॥  
 अतोऽर्हतः स्थावरतां स्यातां नैवं यथा पुनः ।  
 स्मृतिः स्यान्मत्प्रसादेन तत्रापि मदनुग्रहात् ॥ २१ ॥  
 वासुदेवस्य सान्निध्यं लब्ध्वा दिव्यशरच्छते ।  
 वृत्ते स्वर्लोकतां भूयो लब्धभक्ती भविष्यतः ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

यत्—चूँकि; इमौ—ये दोनों तरुण देवता; लोक-पालस्य—महान् देवता कुवेर के; पुत्रौ—पुत्र; भूत्वा—होकर; तमः—प्लुतौ—तमोगुण में बुरी तरह से मग्न; न—नहीं; विवाससम्—बिना किसी वस्त्र के, पूरी तरह नंगे; आत्मानम्—अपने शरीरों को; विजानीतः—जानते हुए कि नंगे हैं; सु-दुर्मदौ—मिथ्या अहंकार के कारण अत्यन्त पतित; अतः—इसलिए; अर्हतः—पात्र हैं; स्थावरताम्—वृक्ष जैसी गतिहीनता; स्याताम्—हो जायें; न—नहीं; एवम्—इस तरह; यथा—जिस तरह; पुनः—फिर; स्मृतिः—याद; स्यात्—बनी रहे; मत्-प्रसादेन—मेरी कृपा से; तत्र अपि—इसके अतिरिक्त; मत्-अनुग्रहात्—मेरे विशेष अनुग्रह से; वासुदेवस्य—भगवान् का; सान्निध्यम्—संगति, साक्षात्कार; लब्ध्वा—प्राप्त कर; दिव्य-शरत्-शते वृत्ते—देवताओं के एक सौ वर्ष बीतने के बाद; स्वर्लोकताम्—स्वर्गलोक में रहने की इच्छा; भूयः—पुनः; लब्ध-भक्ती—अपनी भक्ति को पुनः प्राप्त करके; भविष्यतः—हो जायेंगे।

ये दोनों युवक, नलकूवर तथा मणिग्रीव, भाग्यवश महान् देवता कुवेर के पुत्र हैं किन्तु मिथ्या प्रतिष्ठा तथा शराब पीने से उत्पन्न उन्मत्तता के कारण ये इतने पतित हो चुके हैं कि नंगे होकर भी यह नहीं समझ पा रहे कि वे नंगे हैं। अतः वृक्षों की तरह रहने वाले ( वृक्ष नंगे होते हैं किन्तु चेतन नहीं होते ) इन दोनों युवकों को वृक्षों का शरीर मिलना चाहिए। यही इनके लिए समुचित दण्ड होगा। फिर भी वृक्ष बनने से लेकर अपने उद्धार के समय तक इन्हें मेरी कृपा से अपने विगत पापकर्मों की याद बनी रहेगी। यही नहीं, मेरी विशेष कृपा से, देवताओं के सौ वर्ष बीतने के बाद ये भगवान् वासुदेव का दर्शन कर सकेंगे और भक्तों के रूप में अपना असली स्वरूप प्राप्त कर सकेंगे।

तात्पर्य : वृक्ष में चेतना नहीं होती क्योंकि जब काटा जाता है, तो उसे पीड़ा का अनुभव नहीं होता। परन्तु नारदमुनि चाहते थे कि नलकूवर तथा मणिग्रीव की चेतना (स्मृति) बनी रहे जिससे वृक्ष-जीवन से मुक्ति पाने के बाद भी वे उस परिस्थिति को न भूल सकें जिसके कारण उन्हें दण्डित होना पड़ा था। अतः उन पर विशेष कृपा करने के लिए नारदमुनि ने ऐसा किया कि मुक्त होने के बाद वे वृन्दावन में कृष्ण का दर्शन कर सकें और अपनी सुप्त भक्ति को फिर से प्राप्त कर सकें।

स्वर्गलोक का एक दिन हमारे छह महीनों के बराबर होता है। यद्यपि स्वर्ग के देवता भोगी हैं किन्तु वे सब भक्त हैं इसीलिए देवता कहलाते हैं। व्यक्ति दो प्रकार के होते हैं—देव तथा असुर। असुरगण कृष्ण के साथ अपने सम्बन्ध को भूल जाते हैं ( *आसुरं भावमाश्रिताः* ) किन्तु देवता नहीं भूलते।

द्वौ भूतसर्गौ लोकेऽस्मिन् दैव आसुर एव च ।

विष्णुभक्तः स्मृतो दैव आसुरस्तद्विपर्ययः ॥

( पद्म पुराण )

शुद्ध भक्त तथा *कर्ममिश्र* भक्त का अन्तर इस प्रकार है—शुद्ध भक्त भौतिक भोग के लिए किसी वस्तु की कामना नहीं करता जबकि *कर्ममिश्र* भक्त इस जगत का सर्वोपरि भोक्ता बनने के लिए भक्त बनता है। भगवान् की भक्ति के कारण प्रत्यक्ष सम्पर्क में रहने से भक्त शुद्ध तथा भौतिक इच्छाओं से अकलुषित रहता है ( *अन्याभिलाषिता शून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम्* ) ।

*कर्ममिश्र* भक्ति से मनुष्य स्वर्गलोक जाता है, *ज्ञानमिश्र* भक्ति से ब्रह्मतेज को प्राप्त होता है और *योगमिश्र* भक्ति से वह भगवान् की सर्वशक्तिमत्ता से परिचित होता है। किन्तु शुद्ध भक्ति कर्म, ज्ञान या योग पर आश्रित नहीं रहती क्योंकि यह एकमात्र प्रेम-व्यापार से युक्त होती है। इसलिए भक्त की मुक्ति मात्र *मुक्ति* नहीं अपितु *विमुक्ति* कहलाती है और पाँचों प्रकार की मुक्तियों—सायुज्य, सारूप्य, सालोक्य, सार्ष्णि तथा सामीप्य को पार कर जाती है। शुद्ध भक्त सदैव शुद्ध सेवा में अपने को लगाता है ( *आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा* ) । देवता के रूप में स्वर्ग में जन्म लेने से अधिकाधिक शुद्ध भक्त बनने का तथा भगवद्धाम जाने का अवसर प्राप्त होता है। नारदमुनि ने प्रकारान्तर से मणिग्रीव तथा नलकूवर को अपने तथाकथित शाप से बहुत बड़ा अवसर प्रदान किया।

श्रीशुक उवाच

एवमुक्त्वा स देवर्षिर्गतो नारायणाश्रमम् ।

नलकूवरमणिग्रीवावासतुर्यमलार्जुनौ ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; एवम् उक्त्वा—ऐसा कह कर; सः—वह; देवर्षिः—परम सन्त-पुरुष नारद; गतः—वहाँ से चला गया; नारायण-आश्रमम्—अपने आश्रम, जिसे नारायण-आश्रम कहते हैं; नलकूवर—नलकूवर; मणिग्रीवौ—तथा मणिग्रीव; आसतुः—वहाँ रह रहे; यमल-अर्जुनौ—जुड़वाँ अर्जुन वृक्ष बनने के लिए।

शुक्रदेव गोस्वामी ने आगे कहा : इस तरह कह कर देवर्षि नारद अपने आश्रम, नारायण-आश्रम को लौट गये और नलकूवर तथा मणिग्रीव जुड़वाँ अर्जुन वृक्ष ( यमलार्जुन ) बन गये ।

तात्पर्य : आज भी अनेक जंगलों में अर्जुन वृक्ष पाये जाते हैं जिनकी छाल हृदय-व्यथा होने पर डाक्टरों द्वारा दवाई तैयार करने के काम आती है। इसका अर्थ यह हुआ कि वृक्ष होने पर भी चिकित्सा-विज्ञान के लिए छाल निकालने पर उन्हें सताया जाता है ।

ऋषेर्भागवतमुख्यस्य सत्यं कर्तुं वचो हरिः ।

जगाम शनकैस्तत्र यत्रास्तां यमलार्जुनौ ॥ २४ ॥

शब्दार्थ

ऋषेः—ऋषि नारद का; भागवत-मुख्यस्य—भक्तों में प्रमुख; सत्यम्—सत्य, सही; कर्तुम्—सिद्ध करने के लिए; वचः—शब्द; हरिः—भगवान् कृष्ण; जगाम—गये; शनकैः—धीरे-धीरे; तत्र—वहाँ; यत्र—जहाँ; आस्ताम्—थे; यमल-अर्जुनौ—दोनों अर्जुन वृक्ष ।

सर्वोच्च भक्त नारद के वचनों को सत्य बनाने के लिए भगवान् श्रीकृष्ण धीरे धीरे उस स्थान पर गये जहाँ दोनों अर्जुन वृक्ष खड़े थे ।

देवर्षिर्मे प्रियतमो यदिमौ धनदात्मजौ ।

तत्तथा साधयिष्यामि यद्गीतं तन्महात्मना ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

देवर्षिः—परम सन्त देवर्षि नारद; मे—मेरा; प्रिय-तमः—सर्वाधिक प्रिय भक्त; यत्—यद्यपि; इमौ—ये दोनों ( नलकूवर तथा मणिग्रीव ); धनद-आत्मजौ—धनी पिता की सन्तान तथा अभक्त; तत्—देवर्षि के वचन; तथा—जिस प्रकार; साधयिष्यामि—सम्पन्न करूँगा ( वे चाहते थे कि मैं यमलार्जुन के समक्ष आऊँ तो मैं ऐसा ही करूँगा ); यत् गीतम्—जैसा कहा जा चुका है; तत्—वैसा; महात्मना—नारदमुनि द्वारा ।

“यद्यपि ये दोनों युवक अत्यन्त धनी कुवेर के पुत्र हैं और उनसे मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है परन्तु देवर्षि नारद मेरा अत्यन्त प्रिय तथा वत्सल भक्त है और क्योंकि उसने चाहा था कि मैं इनके समक्ष आऊँ अतएव इनकी मुक्ति के लिए मुझे ऐसा करना चाहिए ।”

तात्पर्य : नलकूवर तथा मणिग्रीव को वास्तव में न तो भक्ति से, न ही भगवान् के साक्षात्कार से कोई प्रयोजन था, क्योंकि यह कोई ऐसा-वैसा साधारण अवसर नहीं था। ऐसा नहीं है कि यदि कोई धनी हो, या विद्वान या उच्च कुल में जन्मा हो तो उसे भगवान् का साक्षात्कार हो ही जायगा। ऐसा असम्भव है। किन्तु, इस मामले में नारदमुनि की इच्छा थी कि नलकूवर तथा मणिग्रीव वासुदेव का प्रत्यक्ष दर्शन करें अतएव भगवान् ने अपने प्रिय भक्त नारदमुनि के वचनों को पूरा करना चाहा। यदि

सीधे भगवान् से वर माँगने की बजाय किसी भक्त की कृपा प्राप्त की जाय तो बड़ी आसानी से सफलता प्राप्त हो सकती है। इसीलिए श्रील भक्तिविनोद ठाकुर की संस्तुति है—*वैष्णव ठाकुर तोमार कुकुर भुलिया जानह मोरे, कृष्ण से तोमार कृष्ण दिते पार।* मनुष्य को चाहिए कि भक्त के पीछे निरन्तर कुत्ते के समान चलने की कामना करे। कृष्ण तो भक्त के हाथ बिके हुए हैं। *अदुर्लभम् आत्मभक्तौ।* अतः भक्त की कृपा के बिना कृष्ण तक सीधे पहुँचा भी नहीं जा सकता, उनकी सेवा करना तो दूर रहा। इसीलिए नरोत्तम दास ठाकुर ने गाया है—*छाडिया वैष्णव-सेवा निस्तार पायेछे केबा—शुद्ध भक्त का दास बने बिना भवसागर से उद्धार नहीं हो सकता।* हमारे गौड़ीय वैष्णव समाज में, रूप गोस्वामी का अनुसरण करते हुए हमारा पहला कार्य होता है प्रामाणिक आध्यात्मिक गुरु की शरण में जाना (*आदौ गुर्वाश्रयः*)।

इत्यन्तरेणार्जुनयोः कृष्णस्तु यमयोर्ययौ ।  
आत्मनिर्वेशमात्रेण तिर्यगतमुलूखलम् ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

इति—ऐसा निश्चय करके; अन्तरेण—बीच में; अर्जुनयोः—दोनों अर्जुन वृक्षों के; कृष्णः तु—भगवान् कृष्ण; यमयोः ययौ—दोनों वृक्षों के बीच प्रविष्ट हुए; आत्म-निर्वेश-मात्रेण—घुसते ही; तिर्यक्—तिरछी; गतम्—हो गई; उलूखलम्—ओखली।

इस तरह कह कर कृष्ण तुरन्त ही दो अर्जुन वृक्षों के बीच प्रविष्ट हुए जिससे वह बड़ी ओखली जिससे वे बाँधे गये थे तिरछी हो गई और उनके बीच फँस गई।

बालेन निष्कर्षयतान्वगुलूखलं तद्  
दामोदरेण तरसोत्कलिताङ्घ्रिबन्धौ ।  
निष्पेततुः परमविक्रमितातिवेप-  
स्कन्धप्रवालविटपौ कृतचण्डशब्दौ ॥ २७ ॥

शब्दार्थ

बालेन—बालक कृष्ण द्वारा; निष्कर्षयता—घसीटते हुए; अन्वक्—पीछा करती; उलूखलम्—ओखली; तत्—वह; दाम-उदरेण—पेट से बाँधे कृष्ण द्वारा; तरसा—बलपूर्वक; उत्कलित—उखड़ आई; अङ्घ्रि-बन्धौ—दोनों वृक्षों की जड़ें; निष्पेततुः—गिर पड़े; परम-विक्रमित—परम शक्ति द्वारा; अति-वेप—बुरी तरह हिलते-डुलते हुए; स्कन्ध—तना; प्रवाल—पत्तियों के गुच्छे; विटपौ—दोनों वृक्ष; कृत—करते हुए; चण्ड-शब्दौ—भयानक शब्द।

अपने पेट से बाँधी ओखली को बलपूर्वक अपने पीछे घसीटते हुए बालक कृष्ण ने दोनों वृक्षों को उखाड़ दिया। परम पुरुष की महान् शक्ति से दोनों वृक्ष अपने तनों, पत्तों तथा टहनियों समेत बुरी तरह से हिले और तड़तड़ाते हुए भूमि पर गिर पड़े।

तात्पर्य : कृष्ण की यह लीला दामोदर लीला कहलाती है। इसीलिए कृष्ण का एक अन्य नाम दामोदर है। हरिवंश में कहा गया है—

स च तेनैव नाम्ना तु कृष्णो वै दामबन्धनात् ।

गोष्ठे दामोदर इति गोपीभिः परिगीयते ॥

तत्र श्रिया परमया ककुभः स्फुरन्तौ  
सिद्धावुपेत्य कुजयोरिव जातवेदाः ।  
कृष्णं प्रणम्य शिरसाखिललोकनाथं  
बद्धाञ्जली विरजसाविदमूचतुः स्म ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

तत्र—वहाँ, जहाँ अर्जुन वृक्ष गिरे थे; श्रिया—सजायी गयी; परमया—अत्यधिक; ककुभः—सारी दिशाएँ; स्फुरन्तौ—तेज से प्रकाशित; सिद्धौ—दो सिद्ध पुरुष; उपेत्य—निकल कर; कुजयोः—दोनों वृक्षों के बीच से; इव—सदृश; जात-वेदाः—साक्षात् अग्नि; कृष्णम्—भगवान् कृष्ण को; प्रणम्य—प्रणाम करके; शिरसा—सिर के बल; अखिल-लोक-नाथम्—परम पुरुष को, जो सबों के स्वामी हैं; बद्ध-अञ्जली—हाथ जोड़े हुए; विरजसौ—तमोगुण धुल जाने पर; इदम्—यह; ऊचतुः स्म—कहा।

तत्पश्चात् जिस स्थान पर दोनों अर्जुन वृक्ष गिरे थे वहीं पर दोनों वृक्षों से दो महान् सिद्ध पुरुष, जो साक्षात् अग्नि जैसे लग रहे थे, बाहर निकल आये। उनके सौन्दर्य का तेज चारों ओर प्रकाशित हो रहा था। उन्होंने नतमस्तक होकर कृष्ण को नमस्कार किया और हाथ जोड़ कर निम्नलिखित शब्द कहे।

कृष्ण कृष्ण महायोगिस्त्वमाद्यः पुरुषः परः ।  
व्यक्ताव्यक्तमिदं विश्वं रूपं ते ब्राह्मणा विदुः ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

कृष्ण कृष्ण—हे कृष्ण, हे कृष्ण; महा-योगिन्—हे योगेश्वर; त्वम्—तुम; आद्यः—मूल कारण; पुरुषः—परम पुरुष; परः—इस सृष्टि से परे; व्यक्त-अव्यक्तम्—यह विराट जगत जो कार्य-कारण अथवा स्थूल-सूक्ष्म रूपों से बना है; इदम्—यह; विश्वम्—सारा जगत; रूपम्—रूप; ते—तुम्हारा; ब्राह्मणाः—विद्वान् ब्राह्मण; विदुः—जानते हैं।

हे कृष्ण, हे कृष्ण, आपकी योगशक्ति अचिन्त्य है। आप सर्वोच्च आदि-पुरुष हैं, आप समस्त कारणों के कारण हैं, आप पास रह कर भी दूर हैं और इस भौतिक सृष्टि से परे हैं। विद्वान् ब्राह्मण जानते हैं ( सर्व खल्विदं ब्रह्म—इस वैदिक कथन के आधार पर ) कि आप सर्वेसर्वा हैं और यह विराट विश्व अपने स्थूल तथा सूक्ष्म रूपों में आपका ही स्वरूप है।

तात्पर्य : नलकूवर तथा मणिग्रीव नामक दोनों देवता अपनी निरन्तर स्मृति के कारण नारद की कृपा से कृष्ण की श्रेष्ठता को समझ सके। अब उन्होंने स्वीकार किया, “यह आपकी योजना थी कि

नारदमुनि के आशीर्वाद से हमारा उद्धार हो। अतः आप परम योगी हैं। आप भूत, वर्तमान तथा भविष्य—सबके जानने वाले हैं। आपने ऐसी सुन्दर योजना बनाई थी कि यद्यपि हम यहाँ पर जुड़वाँ अर्जुन वृक्ष के रूप में खड़े रहे किन्तु हमारे उद्धार के लिए छोटे बालक के रूप में आप प्रकट हुए हैं। यह आपकी ही अचिन्त्य योजना थी। आप परम पुरुष होने के कारण कुछ भी कर सकते हैं।”

त्वमेकः सर्वभूतानां देहास्वात्मेन्द्रियेश्वरः ।

त्वमेव कालो भगवान्विष्णुरव्यय ईश्वरः ॥ ३० ॥

त्वं महान्प्रकृतिः सूक्ष्मा रजःसत्त्वतमोमयी ।

त्वमेव पुरुषोऽध्यक्षः सर्वक्षेत्रविकारवित् ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

त्वम्—आप; एकः—एक; सर्व-भूतानाम्—सारे जीवों के; देह—शरीर के; असु—प्राण के; आत्म—आत्मा के; इन्द्रिय—इन्द्रियों के; ईश्वरः—परमात्मा, नियंत्रक; त्वम्—आप; एव—निस्सन्देह; कालः—काल; भगवान्—भगवान्; विष्णुः—सर्वव्यापी; अव्ययः—अनश्वर; ईश्वरः—नियन्ता; त्वम्—आप; महान्—सबसे बड़े; प्रकृतिः—भौतिक जगत; सूक्ष्मा—सूक्ष्म; रजः-सत्त्व-तमः-मयी—प्रकृति के तीन गुणों ( रजो, सतो तथा तमो ( गुणों ) से युक्त; त्वम् एव—आप सचमुच हैं; पुरुषः—परम पुरुष; अध्यक्षः—स्वामी; सर्व-क्षेत्र—सारे जीवों के; विकार-वित्—चंचल मन को जानने वाले।

आप हर वस्तु के नियन्ता भगवान् हैं। आप ही हर जीव का शरीर, प्राण, अहंकार तथा इन्द्रियाँ हैं। आप परम पुरुष, अक्षय नियन्ता विष्णु हैं। आप काल, तात्कालिक कारण और तीन गुणों—सतो, रजो तथा तमो गुणों—वाली भौतिक प्रकृति हैं। आप इस भौतिक जगत के आदि कारण हैं। आप परमात्मा हैं। अतएव आप हर एक जीव के हृदय की बात को जानने वाले हैं।

तात्पर्य : श्रीपाद मध्वाचार्य ने *वामन पुराण* से निम्नलिखित श्लोक उद्धृत किया है—

रूप्यत्वात् तु जगद् रूपं विष्णोः साक्षात् सुखात्मकम् ।

नित्यपूर्णं समुद्दिष्टं स्वरूपं परमात्मनः ॥

गृह्यमाणैस्त्वमग्राह्यो विकारैः प्राकृतैर्गुणैः ।

को न्विहार्हति विज्ञातुं प्राक्खिद्धं गुणसंवृतः ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

गृह्यमाणैः—दृश्य होने के कारण प्रकृति से बने शरीर को स्वीकार करने से; त्वम्—आप; अग्राह्यः—प्रकृति से निर्मित शरीर में ही सीमित न रह कर; विकारैः—मन द्वारा विचलित; प्राकृतैः गुणैः—प्रकृति के गुणों द्वारा ( सत्त्व गुण, रजोगुण तथा तमो गुण ); कः—कौन है; नु—उसके बाद; इह—इस जगत में; अर्हति—योग्य होता है; विज्ञातुम्—जानने के लिए; प्राक्खिद्धम्—सृष्टि के पूर्व उपस्थित; गुण-संवृतः—भौतिक गुणों से आच्छन्न होने के कारण।

हे प्रभु, आप सृष्टि के पूर्व से विद्यमान हैं। अतः इस जगत में भौतिक गुणों वाले शरीर में बन्दी रहने वाला ऐसा कौन है, जो आपको समझ सके ?

तात्पर्य : कहा गया है ( भक्तिरसामृत सिन्धु १.२.२३४)

अतः श्रीकृष्णनामादि न भवेद् ग्राह्यमिन्द्रियैः।

सेवोन्मुखे हि जिह्वादौ स्वयमेव स्फुरत्यदः ॥

कृष्ण के नाम, गुण तथा रूप परम सत्य हैं, जो सृष्टि के प्रारम्भ से विद्यमान हैं। अतः जो सृजित किये गये हैं—जो भौतिक तत्त्वों से बने शरीरों में बन्दी हैं—भला वे कृष्ण को किस तरह भलीभाँति समझ सकते हैं? ऐसा सम्भव नहीं। किन्तु, सेवोन्मुखे हि जिह्वादौ स्वयमेव स्फुरत्यदः—जो भक्ति में लगे हैं उनके समक्ष कृष्ण प्रकट होते हैं। इसकी पुष्टि भगवद्गीता (१८.१५) में भी स्वयं भगवान् ने की है— भक्त्या मामभिजानाति। कभी कभी श्रीमद्भागवत में दिये गये कृष्ण विषयक विवरणों का मन्द बुद्धि वाले अल्पज्ञ लोग गलत अर्थ लगाते हैं। अतः उन्हें जानने का सर्वोत्तम उपाय है कि शुद्ध भक्ति में प्रवृत्त हुआ जाय। भक्ति में जो जितनी प्रगति करता है, वह उन्हें यथार्थ रूप में उतना ही अधिक समझ सकता है। यदि भौतिक पद से कृष्ण को समझा जा सकता तो क्योंकि कृष्णा ही सबकुछ है (सर्वं खलु इदं ब्रह्म) इस संसार की किसी भी वस्तु को देखकर कृष्ण को समझा जा सकता था। किन्तु ऐसा सम्भव नहीं है।

मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना।

मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः ॥

( भगवद्गीता ८.४)

सारी वस्तुएँ कृष्ण पर टिकी हैं और सारी वस्तुएँ कृष्ण हैं किन्तु भौतिक पद पर स्थित व्यक्तियों को इसकी अनुभूति नहीं हो पाती।

तस्मै तुभ्यं भगवते वासुदेवाय वेधसे ।

आत्मद्योतगुणैश्छन्नमहिम्ने ब्रह्मणे नमः ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

तस्मै—उसको; तुभ्यम्—आपको; भगवते—भगवान् को; वासुदेवाय—संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध के उद्गम वासुदेव को; वेधसे—सृष्टि के उद्गम को; आत्म-द्योत-गुणैः छन्न-महिम्ने—आपको, जिसका यश अपनी ही शक्ति से आच्छादित है; ब्रह्मणे—परब्रह्म को; नमः—हमारा नमस्कार।

अपनी ही शक्ति से आच्छादित महिमा वाले हे प्रभु, आप भगवान् हैं। आप सृष्टि के उद्गम, संकर्षण, हैं और चतुर्व्यूह के उद्गम, वासुदेव, हैं। आप सर्वस्व होने से परब्रह्म हैं अतएव हम



आपको सादर नमस्कार करते हैं।

तात्पर्य : कृष्ण को विस्तार से जानने का प्रयास करने की अपेक्षा श्रेयस्कर यही होगा कि हम उन्हें सादर नमस्कार करें क्योंकि वे हर वस्तु के उद्गम हैं और सर्वस्व हैं। चूँकि हम प्रकृति के गुणों से प्रच्छन्न हैं अतएव जब तक वे हमारे समक्ष प्रकट न हों तब तक हमारे लिए उन्हें समझ पाना अत्यन्त कठिन है। इसलिए यह स्वीकार करना श्रेयस्कर है कि वे ही सर्वस्व हैं और हम उनके चरणकमलों में नमस्कार करें।

यस्यावतारा ज्ञायन्ते शरीरेष्वशरीरिणः ।

तैस्तैरतुल्यातिशयैर्वीर्यैर्देहिष्वसङ्गतैः ॥ ३४ ॥

स भवान्सर्वलोकस्य भवाय विभवाय च ।

अवतीर्णोऽंशभागेन साम्प्रतं पतिराशिषाम् ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ

यस्य—जिसका; अवताराः—विभिन्न अवतार यथा मत्स्य, कूर्म, वराह; ज्ञायन्ते—कल्पित किये जाते हैं; शरीरेषु—भिन्न भिन्न प्रकार से दृश्य विभिन्न शरीरों में; अशरीरिणः—सामान्य शरीर नहीं अपितु दिव्य हैं; तैः तैः—उन्हीं उन्हीं कर्मों द्वारा; अतुल्य—अतुलनीय; अति-शयैः—असीम; वीर्यैः—बल द्वारा; देहिषु—शरीरधारियों द्वारा; असङ्गतैः—विभिन्न अवतारों में जो कार्य कर पाना असम्भव है; सः—वही परमेश्वर; भवान्—आप; सर्व-लोकस्य—हर एक की; भवाय—उन्नति के लिए; विभवाय—मुक्ति के लिए; च—तथा; अवतीर्णः—अवतरित हुए हैं; अंश-भागेन—अंश समेत पूर्ण शक्ति में; साम्प्रतम्—इस क्षण; पतिः आशिषाम्—आप समस्त शुभ के स्वामी भगवान् हैं।

आप मत्स्य, कूर्म, वराह जैसे शरीरों में प्रकट होकर ऐसे प्राणियों द्वारा सम्पन्न न हो सकने वाले कार्यकलाप—असामान्य, अतुलनीय, असीम शक्ति वाले दिव्य कार्य—प्रदर्शित करते हैं। अतएव आपके ये शरीर भौतिक तत्त्वों से नहीं बने होते अपितु आपके अवतार होते हैं। आप वही भगवान् हैं, जो अब अपनी पूर्ण शक्ति के साथ इस जगत के सारे जीवों के लाभ के लिए प्रकट हुए हैं।

तात्पर्य : भगवद्गीता (४.७-८) में कहा गया है—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।

अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।

धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ॥

जब असली आध्यात्मिक जीवन का हास होता है और जब संसार में उत्पात मचाने के लिए धूर्तों

तथा चोरों की वृद्धि होती है, तो कृष्ण प्रकट होते हैं। अभागे, अल्पज्ञ, भक्तिहीन लोग भगवान् के कार्यकलापों को नहीं समझ सकते अतः ऐसे व्यक्ति ऐसे कार्यों को कल्पना बतलाते हैं क्योंकि वे धूर्त तथा अधम होते हैं ( न मां दुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यन्ते नराधमाः )। ऐसे लोग यह नहीं समझ पाते कि पुराणों तथा अन्य शास्त्रों में व्यासदेव ने जिन घटनाओं का वर्णन किया है वे काल्पनिक नहीं अपितु यथार्थ हैं।

कृष्ण अपनी असीमपूर्ण शक्ति से प्रदर्शित करते हैं कि वे भगवान् हैं क्योंकि दोनों वृक्ष इतने विशाल तथा सुदृढ़ थे कि कई हाथी मिल कर भी उन्हें हिला नहीं सकते थे। पर बालकरूप कृष्ण ने ऐसी असामान्य शक्ति दिखलाई कि वे धमाके के साथ भूमि पर गिर पड़े। प्रारम्भ से ही पूतना, शकटासुर तथा तृणावर्त को मार कर, वृक्षों को गिराकर तथा अपने मुख के भीतर सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड दिखलाकर कृष्ण ने सिद्ध कर दिया था कि वे भगवान् हैं। पापकर्मों के कारण अधमाधम ( मूढ ) इसे नहीं समझ सकता किन्तु भक्तगण इसे किसी शंका के बिना स्वीकार कर लेते हैं। इस तरह भक्त का स्थान अभक्त से भिन्न है।

नमः परमकल्याण नमः परममङ्गल ।

वासुदेवाय शान्ताय यदूनां पतये नमः ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

नमः—हम नमस्कार करते हैं; परम-कल्याण—आप परम कल्याण हैं; नमः—हमारा आपको नमस्कार; परम-मङ्गल—आप जो भी करते हैं वह उत्तम है; वासुदेवाय—वासुदेव को; शान्ताय—अत्यन्त शान्त को; यदूनाम्—यदुवंश के; पतये—नियन्ता को; नमः—हमारा नमस्कार है।

हे परम कल्याण, हम आपको सादर नमस्कार करते हैं क्योंकि आप परम शुभ हैं। हे यदुवंश के प्रसिद्ध वंशज तथा नियन्ता, हे वसुदेव-पुत्र, हे परम शान्त, हम आपके चरणकमलों में सादर नमस्कार करते हैं।

तात्पर्य : परम-कल्याण शब्द महत्त्वपूर्ण है क्योंकि कृष्ण अपने किसी भी अवतार में साधुओं की रक्षा करने के लिए ही प्रकट होते हैं ( परित्राणाय साधूनाम् )। साधुगण अर्थात् सन्त-पुरुष या भक्तगण सदैव असुरों द्वारा सताये जाते हैं और कृष्ण विविध अवतारों में प्रकट होकर उन्हें राहत दिलाते हैं। उनका यह पहला कार्य है। यदि हम कृष्ण के जीवन का इतिहास पढ़ें तो पायेंगे कि अधिकांश जीवन में वे एक एक करके असुरों का वध करने में ही लगे रहे।

अनुजानीहि नौ भूमंस्तवानुचरकिङ्करौ ।  
दर्शनं नौ भगवत ऋषेरासीदनुग्रहात् ॥ ३७ ॥

शब्दार्थ

अनुजानीहि—आप अनुमति दें; नौ—हमें; भूमन्—हे विराट रूप; तव अनुचर-किङ्करौ—हम आपके विश्वस्त भक्त नारदमुनि के दास हैं; दर्शनम्—साक्षात् देखने के लिए; नौ—हमारा; भगवतः—आपका; ऋषेः—नारद ऋषि का; आसीत्—था ( शाप के रूप में ); अनुग्रहात्—कृपा से।

हे परम रूप, हम सदैव आपके दासों के, विशेष रूप से नारदमुनि के दास हैं। अब आप हमें अपने घर जाने की अनुमति दें। यह तो नारदमुनि की कृपा है कि हम आपका साक्षात् दर्शन कर सके।

तात्पर्य : भक्त का आशीर्वाद पाये बिना मनुष्य को अनुभूति नहीं हो पाती कि कृष्ण भगवान् हैं। मनुष्याणां सहस्रेषु, कश्चिद् यतति सिद्धये। भगवद्गीता के इस श्लोक (७.३) के अनुसार, ऐसे अनेक सिद्ध या योगी हैं, जो कृष्ण को नहीं समझ पाते। उल्टे वे उनका गलत अर्थ लगाते हैं। किन्तु यदि नारद की परम्परा से चले आ रहे ( स्वयम्भून्नारदः शम्भुः ) भक्त की शरण ग्रहण की जाय तो यह समझ में आ सकता है कि कौन व्यक्ति भगवान् का अवतार है। इस युग में अनेक छद्म अवतार इसलिए विज्ञापित किये जाते हैं कि वे कुछ जादूगरी दिखला चुके हैं किन्तु नारद के दासों तथा कृष्ण के अन्य दासों के अतिरिक्त अन्य कोई भी यह नहीं समझ सकता कि कौन ईश्वर है और कौन नहीं है। इसकी पुष्टि नरोत्तम दास ठाकुर ने की है। छाडिया वैष्णवसेवा निस्तार पायेछे केबा—जब तक किसी वैष्णव की कृपा नहीं होती तब तक जीवन के भौतिक बोध से कोई छुटकारा नहीं पाता। अन्य लोग न तो कल्पना से न ही शारीरिक या मानसिक आसनों से कभी समझ सकेंगे।

वाणी गुणानुकथने श्रवणौ कथायां  
हस्तौ च कर्मसु मनस्तव पादयोर्नः ।  
स्मृत्यां शिरस्तव निवासजगत्प्रणामे  
दृष्टिः सतां दर्शनेऽस्तु भवत्तनूनाम् ॥ ३८ ॥

शब्दार्थ

वाणी—शब्द, बोलने की शक्ति; गुण-अनुकथने—सदैव आपकी लीलाओं के विषय में बातें करने में व्यस्त; श्रवणौ—कान; कथायाम्—आपकी तथा आपकी लीलाओं के विषय में बातें करने में; हस्तौ—हाथ, पैर तथा अन्य इन्द्रियाँ; च—भी; कर्मसु—आपका आदेश पालन करने में लगाकर; मनः—मन; तव—आपका; पादयोः—चरणकमलों का; नः—हमारी; स्मृत्याम्—ध्यान में लगी स्मृति में; शिरः—सिर; तव—आपका; निवास-जगत्-प्रणामे—चूँकि आप सर्वव्यापी हैं और सर्वस्व हैं तथा हमारे

सिरों को नत होना चाहिए, भोग के लिए नहीं; दृष्टि:—देखने की शक्ति; सताम्—वैष्णवों के; दर्शने—दर्शन करने में; अस्तु—इसी तरह लगे रहें; भवत्-तनूनाम्—जो आपसे अभिन्न हैं।

अब से हमारे सभी शब्द आपकी लीलाओं का वर्णन करें, हमारे कान आपकी महिमा का श्रवण करें, हमारे हाथ, पाँव तथा अन्य इन्द्रियाँ आपको प्रसन्न करने के कार्यों में लगे तथा हमारे मन सदैव आपके चरणकमलों का चिन्तन करें। हमारे सिर इस संसार की हर वस्तु को नमस्कार करें क्योंकि सारी वस्तुएँ आपके ही विभिन्न रूप हैं और हमारी आँखें आपसे अभिन्न वैष्णवों के रूपों का दर्शन करें।

तात्पर्य : यहाँ पर भगवान् को समझने की विधि दी गई है। यह विधि भक्ति है।

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।

अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ॥

( भागवत ७.५.२३ )

हर वस्तु को भगवान् की सेवा में लगाना चाहिए। हृषीकेण हृषीकेशसेवनं भक्तिरुच्यते (नारद पञ्चरात्र)। भगवान् कृष्ण की सेवा में हर वस्तु को—मन, शरीर तथा सारी इन्द्रियों को—लगाना चाहिए। इसे नारद, स्वयम्भू तथा शम्भु जैसे दक्ष भक्तों से सीखना होगा। यही विधि है। हम भगवान् को समझने की अपनी विधि नहीं गढ़ सकते क्योंकि ऐसा नहीं है कि हम जो भी कल्पना कर लें या मन से गढ़ लें उससे भगवान् का ज्ञान हो जायेगा। ऐसा विचार—यत मत, तत पथ—मूर्खतापूर्ण होता है। कृष्ण कहते हैं—भक्त्याहमेकया ग्राह्यः—केवल भक्ति के कार्यों द्वारा मुझे समझा जा सकता है ( भागवत ११.१४.२१ )। यह आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनम् अर्थात् भगवान् की सेवा में अनुकूल भाव से लगे रहना कहलाता है।

श्रीशुक उवाच

इत्थं सङ्कीर्तितस्ताभ्यां भगवान्गोकुलेश्वरः ।

दाम्ना चोलूखले बद्धः प्रहसन्नाह गुह्यकौ ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; इत्थम्—इस प्रकार, जैसाकि पहले कहा जा चुका है; सङ्कीर्तितः—महिमा का गायन किये जाने तथा प्रशंसित होने पर; ताभ्याम्—दोनों देवताओं द्वारा; भगवान्—भगवान्; गोकुल-ईश्वरः—गोकुल के स्वामी ( क्योंकि वे सर्व-लोक-महेश्वर हैं ); दाम्ना—रस्सी से; च—भी; उलूखले—ओखली में; बद्धः—बंधे हुए; प्रहसन्—हँसते हुए; आह—कहा; गुह्यकौ—दोनों देवताओं से।

शुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा : इस तरह दोनों देवताओं ने भगवान् की स्तुति की। यद्यपि

भगवान् कृष्ण सबों के स्वामी हैं और गोकुलेश्वर थे किन्तु वे गोपियों की रस्सियों द्वारा लकड़ी की ओखली से बाँध दिये गये थे इसलिए उन्होंने हँसते हुए कुवेर के पुत्रों से ये शब्द कहे।

तात्पर्य : कृष्ण इसलिए मुसका रहे थे क्योंकि वे सोच रहे थे, “ये दोनों युवा देवता स्वर्गलोक से इस लोक में गिरे हैं और यद्यपि दीर्घकाल से वृक्षों के रूप में खड़े इन दोनों को मैंने बन्धन से छुटकारा दिला दिया है किन्तु मैं स्वयं गोपियों की रस्सियों से बाँधा हुआ हूँ और उनकी डाँटे सह रहा हूँ।” दूसरे शब्दों में, कृष्ण शुद्ध प्रेमवश जो भक्त द्वारा कई विधियों से प्रशंसनीय है, गोपियों द्वारा डाँटे तथा बाँधे जाने को अंगीकार करते हैं।

श्रीभगवानुवाच

ज्ञातं मम पुरैवैतदृषिणा करुणात्मना ।

यच्छ्रीमदान्धयोर्वाग्भिर्विभ्रंशोऽनुग्रहः कृतः ॥ ४० ॥

शब्दार्थ

श्री-भगवान् उवाच—श्रीभगवान् ने कहा; ज्ञातम्—ज्ञात है; मम—मुझको; पुरा—भूतकाल में; एव—निस्सन्देह; एतत्—यह घटना; ऋषिणा—नारद ऋषि से; करुणा-आत्मना—तुम पर अत्यधिक कृपालु होने के कारण; यत्—जो; श्री-मद-अन्धयोः—जो भौतिक ऐश्वर्य के पीछे उन्मत्त हो चुके थे फलतः अंधे बन गये थे; वाग्भिः—वाणी से या शाप से; विभ्रंशः—स्वर्गलोक से गिर कर यहाँ पर अर्जुन वृक्ष बनने के लिए; अनुग्रहः कृतः—तुम पर उन्होंने बहुत अनुग्रह किया है।

भगवान् ने कहा : परम सन्त नारदमुनि अत्यन्त कृपालु हैं। उन्होंने अपने शाप से तुम दोनों पर बहुत बड़ा अनुग्रह किया है क्योंकि तुम दोनों भौतिक ऐश्वर्य के पीछे उन्मत्त होकर अन्धे बन चुके थे। यद्यपि तुम दोनों स्वर्गलोक से गिर कर वृक्ष बने थे किन्तु उन्होंने तुम दोनों पर सर्वाधिक कृपा की। मैं प्रारम्भ से ही इन घटनाओं को जानता था।

तात्पर्य : अब भगवान् द्वारा इसकी पुष्टि हो जाती है कि भक्त का शाप अनुग्रह भी माना जाता है। जिस तरह कृष्ण अर्थात् ईश्वर सर्वमंगल रूप हैं उसी तरह वैष्णव भी होता है। वह जो भी करता है, वह हर एक के लिए शुभ होता है। इसकी व्याख्या अगले श्लोक में की गई है।

साधूनां समचित्तानां सुतरां मत्कृतात्मनाम् ।

दर्शनान्नो भवेद्वन्धः पुंसोऽक्ष्णोः सवितुर्यथा ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

साधूनाम्—सारे भक्तों का; सम-चित्तानाम्—जो हर एक के प्रति समभाव रखते हैं; सुतराम्—पूर्णतया; मत्-कृत-आत्मनाम्—उन व्यक्तियों का जो पूर्ण शरणागत हैं या मेरी सेवा करने के लिए कृतसंकल्प हैं; दर्शनात्—मात्र दर्शन करने से; नो भवेत् बन्धः—सारे भौतिक बन्धन से मुक्ति; पुंसः—व्यक्ति का; अक्ष्णोः—आँखों का; सवितुः यथा—मानो सूर्य के समक्ष हो।

जब कोई व्यक्ति सूर्य के समक्ष होता है, तो उसकी आँखों में अँधेरा नहीं रह जाता। इसी तरह जब कोई व्यक्ति ऐसे साधु या भक्त के समक्ष होता है, जो पूर्णतया दृढ़ तथा भगवान् के शरणागत होता है, तो उसका भव-बन्धन छूट जाता है।

तात्पर्य : चैतन्य महाप्रभु ने ( चैतन्य-चरिताम्, मध्य २२.५४) कहा है—

‘साधु-संग’ ‘साधु-संग’—सर्व-शास्त्रे कथम् ।

लव-मात्र साधु-संगे सर्वसिद्धिं हय ॥

यदि संयोगवश किसी की साधु अर्थात् भक्त से भेंट हो जाती है, तो उसका जीवन तत्क्षण सफल हो जाता है और वह भव-बन्धन से छूट जाता है। यह तर्क किया जा सकता है कि जहाँ एक व्यक्ति साधु का अत्यधिक आदर करता है, वहाँ दूसरा व्यक्ति साधु का उतना आदर नहीं कर पाता। किन्तु साधु हर व्यक्ति पर सम-दृष्टि रखता है। शुद्ध भक्त होने से साधु सदैव भेदभाव भूल कर कृष्णभावनामृत प्रदान करने के लिए उद्यत रहता है। साधु का दर्शन करने से ही मनुष्य मुक्त हो जाता है। तो भी जो लोग अत्यधिक अपराधी हैं, जो वैष्णव अपराध करते हैं या साधु अपराध करते हैं, उन्हें सुधरने में कुछ समय लगता है। इसका भी इसमें संकेत है।

तद्गच्छतं मत्परमौ नलकूवर सादनम् ।

सञ्जातो मयि भावो वामीप्सितः परमोऽभवः ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ

तत् गच्छतम्—अब तुम दोनों जा सकते हो; मत्-परमौ—मुझे अपने जीवन का परम लक्ष्य मान कर; नलकूवर—हे नलकूवर तथा मणिग्रीव; सादनम्—अपने घर; सञ्जातः—सम्पृक्त; मयि—मुझमें; भावः—भक्ति; वाम्—तुम्हारे द्वारा; ईप्सितः—अभिलषित; परमः—सर्वोच्च, सारी इन्द्रियों से सदैव संलग्न; अभवः—जिससे जगत में आना न हो।

हे नलकूवर तथा मणिग्रीव, अब तुम दोनों अपने घर वापस जा सकते हो। चूँकि तुम मेरी भक्ति में सदैव लीन रहना चाहते हो अतः मेरे प्रति प्रेम उत्पन्न करने की तुम दोनों की इच्छा पूरी होगी और अब तुम उस पद से कभी भी नीचे नहीं गिरोगे।

तात्पर्य : जीवन की सर्वोच्च सिद्धि है भक्ति-पद को प्राप्त करना और भक्ति कार्यों में सदैव लगे रहना। ऐसा जान कर ही नलकूवर तथा मणिग्रीव ने उस पद को प्राप्त करना चाहा और भगवान् ने उनकी वह दिव्य अभिलाषा पूरी होने का आशीर्वाद दिया।

श्रीशुक उवाच

इत्युक्तौ तौ परिक्रम्य प्रणम्य च पुनः पुनः ।

बद्धोलूखलमामन्त्र्य जग्मतुर्दिशमुत्तराम् ॥ ४३ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; इति उक्तौ—इस तरह भगवान् द्वारा आदेश दिये जाने पर; तौ—नलकूवर तथा मणिग्रीव; परिक्रम्य—परिक्रमा करके; प्रणम्य—नमस्कार करके; च—भी; पुनः पुनः—फिर फिर, बारम्बार; बद्ध-उलूखलम् आमन्त्र्य—ओखली से बँधे भगवान् से अनुमति लेकर; जग्मतुः—विदा हो गये; दिशम् उत्तराम्—अपने अपने गन्तव्यों को ।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : इस प्रकार कहे जाने पर, उन दोनों देवताओं ने लकड़ी की ओखली से बँधे भगवान् की परिक्रमा की और उनको नमस्कार किया। भगवान् कृष्ण से अनुमति लेने के बाद वे अपने अपने धामों को वापस चले गये।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध के अन्तर्गत “यमलार्जुन वृक्षों का उद्धार” नामक दसवें अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।